पूर्वोत्तर का बांस उद्योग: छोटी सी पहल से बदल सकती है तस्वीर

अविनाश चंद्र

पूर्वोत्तर राज्यों के लोगों ने प्रकृति और संस्कृति, कला और जीवन, सामरिक ललक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक शांति, जैव एवं सांस्कृतिक विविधता के बीच एक बेमिसाल तालमेल स्थापित किया है और इसे संरक्षित भी किया है। इन लोगों ने इस संतुलन की खूबी को संगीत, कला, स्थापत्य, अपनी सोच और ज्ञान प्रणाली, जीवन के आधारभूत रीति रिवाज से लेकर अपने कार्यों, मौसम और प्रकृति में संजोए रखा है। इससे स्थानीय वनस्पति न केवल उनके दैनिक जीवन बल्कि जीविका से भी जुड गयी है। किंतु, कुछ कानूनी व तकनीकी अड़चनें उनकी इस प्रकृति-अनुकूल जीवन शैली व जीविका प्रणाली को कठिन बनाने लगती हैं। प्रशासकीय स्तर पर एक छोटी सी पहल अर्थात कानूनी बदलाव इस समुदाय के लिए छोटे-छोटे बहुत ही क्रांतिकारी बदलाव ला सकते हैं

पूर्वोत्तर अपनी भौगोलीय और पर्यावरणीय विविधता के कारण अलौकिक सुंदरता वाला क्षेत्र है। चारों तरफ हरे भरे जंगल, उत्कृष्ट जड़ी बूटी का खजाना, तेज प्रवाह में बहते नदी नाले, शानदार पहाड़ और बर्फ से ढ़की हुई अद्भुत चोटियां इस क्षेत्र को अलौकिक बनाते हैं। प्रकृति ने पूर्वोत्तर को खुले दिल से विलक्षण खूबसूरती और वानिकी जीवन का कीमती खजाना दिया है जो इस क्षेत्र को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधाता के कारण मशहूर करता है। हालांकि आठ राज्यों वाला पूर्वोत्तर क्षेत्र जो कि 262179 वर्ग किमी में फैला हुआ है को प्रकृति ने एक और खास चीज बड़े ही आम तरीके से प्रदान की है। आम तौर पर मिलने वाली इस खास चीज को हम 'ग्रीन गोल्ड' अथवा बांस के नाम से जानते हैं। देश में बांस के कुल उत्पादन का दो तिहाई हिस्सा इन आठ राज्यों से ही आता है। थिंकटैंक सेंटर फॉर सिविल सोसायटी के शोधार्थियों के मुताबिक देश में पाई जाने वाली बांस की लगभग 58 प्रजाति की 125 उपजातियों में 89 उपजातियां अकेले इन्हीं राज्यों में पाई जाती हैं। बांस की सर्वसुलभता और इसकी महत्ता का अंदाजा यहां के लोगों के जीवन, कला एवं संस्कृति में रचे बसे होने को देखकर लगाई जा सकती है। बांस का प्रयोग दैनिक उपयोग की सभी चीजों भोजन, दवाईयों, गृह निर्माण, कागज, गृह एवं कुटीर उद्योग में किया जाता है।

क्या है समस्या?

दरअसल बांस का उत्पादन अब तक भारतीय वन अधिनियम, 1927 के तहत विनियमित होता रहा था। वर्ष 2006 में भारतीय वनाधिकार अधिनियम बनाकर बांस उत्पादन को सहज बनाने का प्रयास किया गया लेकिन पुराने कानून को पूरी तरह खत्म नहीं किया गया। इन दोनों कानूनों के बारे में विस्तृत विवरण आलेख में आगे दिया जा रहा है। फिलहाल, दोनों कानूनों के एक साथ अस्तित्व में होने के कारण इनके बीच के विरोधाभासों का दुरुपयोग बांस उत्पादकों की राह मुश्किल कर रहा है।

पूर्वोत्तर के राज्यों सहित तमाम प्रदेशों में नौकरशाही आज भी अपनी मनमानी कर रही है और आजादी के पूर्व के कानून अब भी लागू किए जा रहे हैं। नए कानून की अनदेखी की जा रही है जिससे वनों में मौजूद बांस को काटने पर प्रतिबंध तो है ही अपनी निजी जमीन पर भी बांस उगाने और काटने पर तमाम नियम लागू हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी जमीन पर बांस उगाता है तो उसे काटकर बाज़ार में बेचने से पूर्व उसे अधिकारियों से ट्रांजिट पास लेने की जरूरत पड़ती है। ट्रांजिट पास प्राप्त करने की प्रक्रिया काफी समय बर्बाद करती है और नौकरशाही को गैर जरूरी अधिकार भी प्रदान करती है।

सुप्रीम कोर्ट में दाखिल एक याचिका में पर्यावरण संरक्षण, बांस उद्योग को बढ़ावा देने और देश में रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए कई सुझाव दिए गए हैं। इनमें जनजातीय मामलों के मंत्रालय के 12 जुलाई 2012 में लिखे गए पत्र के सुझावों के अनुसार राज्य सरकारों को ट्रांजिट पास जैसी बाध्यता को पूर्णतया समाप्त कर देना मुख्य रूप से शामिल है। इसके अतिरिक्त भारतीय वन अधिनियम

लेखक वेबपोर्टल www.azadi.me के संपादक हैं। विकास संबंधी विषयों पर शोध में इनकी रुचि है। ईमेल: avinash@ccs.in

1927 में बदलाव कर बांस को पेड़ की बजाए घास के तौर पर वर्णित किया जाना चाहिए और इसके कटाव पर से रोक हटा लेने, लैंड सीलिंग एक्ट में बदलाव कर बांस के पौध रोपण को चाय, कॉफी व इलाईची के पौधारोपण के समतुल्य बनाए जाने जैसे सुझाव शामिल हैं।

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि बांस पेड़ नहीं घास की एक प्रजाति है। दुनिया के तमाम देशों ने बांस को घास के तौर पर वर्गीकृत करते हुए इसकी कटाई और व्यावसायिक उत्पादन पर से रोक हटा ली है। तमाम देशों ने बांस के व्यापक प्रयोग के मद्देनजर अनेकानेक तकनीकी भी विकसित कर ली है और अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ाने व रोजगार पैदा करने में सफलता भी प्राप्त कर ली है।

बांस व सह-उत्पादों की बढ़ती मांग

समय के साथ-साथ देश व पूर्वोत्तर राज्यों से लगे अन्य देशों में लकड़ी की बढ़ती मांग और अवैध कटाई के कारण यहां के जंगल सिमटते जा रहे हैं। सरकार जंगलों के संरक्षण के लिए भारतीय वन अधिनियम 1927 का कड़ाई से अनुपालन करती है जिसके कारण वनों से लकड़ी (टिंबर) और गैर लकड़ी (नॉन टिंबर) जैसे बांस इत्यादि को पाना अत्यंत मुश्किल हो गया। इसका असर, यहां रोजगार पहले से ही कम उपलब्धता के और घट जाने व बांस व बेंत हस्तशिल्प के विलुप्ति की कगार पर पहुंचने की आशंका गहराने लगी है। पूर्व में बांस व बांस से निर्मित वस्तुएं जहां लोगों के जीवन का अभिन्न अंग थी अब वह केवल पर्यटकों को लुभाने और हस्तशिल्प प्रदर्शनियों की शोभा बढ़ाने तक ही सीमित होती जा रही हैं। परिणाम स्वरूप आर्थिक तौर पर देश के अन्य राज्यों की तुलना में पहले से ही पिछड़े पूर्वोत्तर राज्यों में आजीविका के लिए विस्थापन तेजी से बढ़ा है।

पारिस्थितिकी के अनुकूल होंगे रोजगार अवसर

इस विस्थापन को रोकने, रोजगार के अवसर पैदा करने और पूर्वोत्तर सहित पूरे देश की अर्थव्यवस्था में तेजी लाने के लिए आवश्यक है कि ऐसे उपाय अपनाए जाएं जो उपरोक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति तो करें ही साथ ही साथ यहां की पारिस्थितिकी का भी ध्यान रखें। ऐसे में बांस उम्मीद की किरण बनकर उभरता है। जानकारी के मुताबिक बांस की 1200 से ज्यादा प्रजातियां होती हैं और यह गर्म व सर्द सभी प्रकार के वातावरण में व पहाड़ व मैदान सभी प्रकार के भू-क्षेत्र में पाया जाता है। चूंकि बांस कटाई के बाद स्वत: उत्पन्न हो जाता है और यह अन्य पेड़ों की तुलना में वातावरण से 25% ज्यादा कार्बन डाइ आक्साइड सोखता है और यह मिट्टी को पकड़े रख कर मिट्टी की कटाई को भी कारगर तरीके से रोकता है। इसलिए बांस का व्यावसायिक उत्पादन पूरी तरह पर्यावरण के हित में है। यही कारण है कि दुनिया के तमाम देश बांस उत्पादन और इसके व्यवसायिक प्रयोग को बढ़ावा देने में जुटे हैं। दुनिया में लगभग 600 मिलियन लोगों की आजीविका बांस और इससे संबंधित उद्योगों पर निर्भर है। और आगामी कुछ वर्षों में इस पर आश्रित रोजगार के दुगने से ज्यादा होने की आशा है।

लगभग 100 साल पुराने कानून से उपजा असमंजस

किंतु इस राह में एक बड़ी अड़चन है आजादी पूर्व का भारत का भारतीय वन अधिनिमय 1927। इस एक्ट में बांस को पेड़ के तौर पर वर्गीकृत किया गया है और इसकी कटाई पर सर्वथा रोक है। वन्य उत्पाद होने के नाते जंगलों में इसकी कटाई तो प्रतिबंधित है ही आसपास की निजी जमीन पर भी इसे उगाने, काटने और बाज़ार में बेचने पर प्रतिबंध है। हालांकि वैज्ञानिक अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि बांस पेड़ नहीं घास की एक प्रजाति है। दुनिया के तमाम देशों ने बांस को घास के तौर पर वर्गीकृत करते हुए इसकी कटाई और व्यावसायिक उत्पादन पर से रोक हटा ली है। तमाम देशों ने बांस के व्यापक प्रयोग के मद्देनजर अनेकानेक तकनीकी भी विकसित कर ली है और अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ाने व रोजगार पैदा करने में सफलता भी प्राप्त कर ली है।

बांस के महत्व, उपयोगिता, पर्यावरण हित आदि को देखते हुए हमारे देश में भी वर्ष 2006 में *वनाधिकार अधिनियम* पास किया गया। इस कानून में बांस को नॉन टिंबर के तौर पर वर्गीकृत करते हुए इसकी कटाई से रोक हटा ली गई। किंतु नया कानून लागू होने के बावजूद पुराने कानून को समाप्त नहीं किया गया। फलस्वरूप तमाम राज्य व वहां के नौकरशाह अपनी सुविधा के अनुसार पुराने कानून को लागू करते हुए बांस के उत्पादन, कटाई आदि पर अपना नियंत्रण रखे हुए हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अब भी हम पेड़ों की कटाई पर ही निर्भर हैं।

ऐसा तब है जबकि बांस की उपयोगिता को देखते हुए पर्यावरणविद् इसे 'हरा सोना' भी कहते हैं । बांस उच्च मात्रा में जीवनदायी ऑक्सीजन गैस का उत्सर्जन करता है और कार्बन डाइऑक्साइड को सोखता है। बांस में उच्च तीव्रता के विकिरण (रेडिएशन) को सोखने की अद्भुत क्षमता है, इसलिए यह मोबाइल टॉवरों के दुष्प्रभाव को रोकने में काफी मददगार साबित हो सकता है। बांस प्रदूषण रहित ईंधन भी है क्योंकि यह जलने पर बहुत कम कार्बन डाइऑक्साइड गैस का उत्सर्जन करता है। इसके अतिरिक्त बांस पेड़ों की तुलना में ज्यादा तेजी से विकसित भी होता है।

सेंटर फॉर सिविल सोसायटी द्वारा प्रस्तुत पेपर के मुताबिक अकेले भारत में बांस 90 लाख हेक्टेयर क्षेत्र (विश्व में सबसे बड़ा भूभाग) में पैदा होता है और विश्व बाज़ार में इसकी हिस्सेदारी महज 4.5% है। जबकि चीन में बांस भारत के मुकाबले आधे से भी कम अर्थात 40 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में पैदा होता है किंतु विश्व बाज़ार में इसकी हिस्सेदारी 50% से अधिक है। इसके बावजूद कागज निर्माण सहित विभिन्न उद्योगों यहां तक कि कुटीर

बांस में उच्च तीव्रता के विकिरण (रेडिएशन) को सोखने की अद्भुत क्षमता है, इसलिए यह मोबाइल टॉवरों के दुष्प्रभाव को रोकने में काफी मददगार साबित हो सकता है। बांस प्रदूषण रहित ईंधन भी है क्योंकि यह जलने पर बहुत कम कार्बन डाइऑक्साइड गैस का उत्सर्जन करता है।

उद्योग के तहत बनाए जाने वाली अगरबत्तियों में प्रयुक्त होने वाली तीलियों आदि तक के लिए आवश्यक बांस का अधिकांश हिस्सा चीन द्वारा आयातित बांस पर आश्रित है। चीन द्वारा बांस आयात की प्रक्रिया काफी खर्चिली और समय लेती है जिससे उत्पादन की लागत और समय दोनों काफी बढ़ जाता है।

हाल की प्रगति

साउथ एशियन बैंबू फाउंडेशन (एसएबीएफ) के संस्थापक व कार्यकारी निदेशक कामेश सलाम के मुताबिक पिछले कुछ वर्षों से तमाम गैरसरकारी संगठनों ने बांस को घास का दर्जा दिलाने के लिए कई कदम उठाए हैं। बांस के इतने फायदों को देखते हुए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा एक कानून (2006) पारित किया गया। इस कानून में बांस का वर्गीकरण नॉन टिंबर माइनर फॉरेस्ट उत्पाद (एमएफपी) के तौर पर किया गया है। अर्थात नए कानून के हिसाब से वनों में बांस की कटाई अब प्रतिबंधित नहीं रह गई है। कामेश के मुताबिक कानून में महज एक बदलाव से देश में कम से कम 5 करोड़ रोजगार के अवसर पैदा हो सकेंगे। इससे मामूली निवेश से अर्थव्यवस्था को शुरुआती चरण में 5 हजार करोड़ रुपये प्राप्त होंगे और कुछ वर्षों में ही इसके 10 हजार करोड़ होने की उम्मीद है।

सेंटर फॉर सिविल सोसायटी के एसोसिएट डाइरेक्टर अमित चंद्र के अनुसार बांस के उपयोग और इसकी महत्ता को देखते हुए भारत सरकार ने बांस उद्योग को बढ़ावा देने के लिए यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज-बैंगलोर, कर्नाटका फॉरेस्ट डिपार्टमेंट, नेशनल मिशन ऑन बाम्बू एप्लिकेशन की स्थापना की है। योजना आयोग ने इसे विशेष दर्जा प्रदान करते हुए नेशनल मिशन ऑन बाम्बू टेक्नोलॉजी एंड ट्रेड डेवलपमेंट लांच की है। बांस उद्योग के विकास के लिए द नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट (नाबार्ड) ने भी बाम्बू डेवलपमेंट पॉलिसी के तहत प्राथमिक स्तर पर इसके वाणिज्यीकरण पर जोर दिया है। यदि उपरोक्त सारे कदम बांस व इससे जुड़े उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उठाए गए हैं तो क्या कारण है कि यह क्षेत्र अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहा है? वह भी तब जबकि इसके स्त्रोत उपलब्ध हैं, विश्व बाजार में इसकी मांग भी है, तकनीकी भी है और इसे सरकारी मान्यता भी प्राप्त है।

सुप्रीम कोर्ट की अधिवक्ता एडवोकेट निधि भल्ला के मुताबिक मुख्यत: इसके निम्नलिखित कारण हैं:

1. भारतीय वन अधिनियम, 1927 के सेक्शन 2 के अनुसार बांस अब भी लकड़ी है।
2. राज्यों ने अपने कानूनों को वनाधिकार अधिनियम 2006 में समाहित नहीं किया है अत: लकड़ी (पेड़ों) पर लागू होने वाले सभी नियम कानून बांस पर भी लागू होते हैं।
3. बांस काटने और परिवहन पर प्रतिबंध (भारतीय वन अधिनियम के सेक्शन 26, सेक्शन 32 व सेक्शन 41 पढ़ें)
4. परमिट प्राप्त करने की थकाऊ, समय बर्बाद करने व प्रताड़ित करने वाली प्रक्रिया आदि

हालांकि बांस के क्षेत्र में हममें कुछ प्रगतिशील परिवर्तन भी देखने को मिले हैं:

- द पंचायत (एक्सटेंशन टू रूरल एरियाज) एक्ट, 1996 - माइनर फॉरेस्ट प्रोडक्ट्स का स्वामित्व ग्राम पंचायत को प्रदान किया गया है।
- माननीय सर्वोच्च अदालत ने वर्ष 1996 में बांस को माइनर फॉरेस्ट प्रोडक्ट के तौर पर मान्यता देते हुए जंगलों में इसकी कटाई पर से रोक हटा दिया।

बांस गांवों में लकड़ी और लोहे के विकल्प को बखूबी पूरा करता है। आज मनुष्य लकड़ी को अपनी आवश्यकता एवं उपभोग की पहली पसंद बनाकर जंगलों एवं वृक्षों की अंधाधुंध कटाई कर रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में अगर हम देखें तो लकड़ी के विकल्प के रूप में बांस पर्यावरण संतुलन में अपनी महती भूमिका निभा सकता है। अभी तक लकड़ी के विकल्प के न होने का रोना रोया जा रहा था लेकिन वस्तुत: यह विकल्प की अनदेखी करना है।

- वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की तरफ से 14 मई 2013 में राज्य सरकारों से निजी भूमि पर उगाए गए बांस के लिए ट्रांजिट पास की अनिवार्यता समाप्त करने का आग्रह किया गया।
- भारतीय वन अधिनियम के सेक्शन 41 के अनुसार, राज्य सरकारों को भी लकड़ी व अन्य जंगली उत्पाद के परिवहन (ट्रांजिट) से संबंधित अपने नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है। यहां तक कि सेक्शन 41 (ई) बांस व अन्य वन्य उत्पादों को ट्रांजिट रेग्युलेशन से छूट भी प्रदान की गई है।

इसके बावजूद बाम्बू सेक्टर में कुछ खास नहीं बदला है। कोटा राज/लाइसेंस राज प्रणाली ने देश को दशकों तक जकड़े रखा। बड़े उद्योगों को 1991 में आर्थिक व व्यापार करने की आजादी प्राप्त हो गई किंतु छोटे उद्योग अब भी सदियों पुराने नियमों में जकड़े हुए हैं और आर्थिक आजादी व विकास से दूर हैं। चूंकि राज्य अब बांस उद्योग को उदार और व्यावसायीकरण कर विकसित करना चाहते हैं इसलिए यह जरूरी हो गया है कि इस मामले में दखल दिया जाए। उदाहरण के लिए नागालैंड ट्रांजिट पास की समस्या के कारण सबसे प्रभावित राज्य है।

पूर्वोत्तर के लोगों, उनकी संस्कृति और पर्यावरण के बारे में सतही समझ के चलते हम उस क्षेत्र की भावना को अच्छी तरह से समझ नहीं पाए हैं। इसलिए पूर्वोत्तर का प्रतिनिधित्व करते वक्त हमारा ध्यान उग्रवाद, आतंकवाद, ड्रग्स के कारोबार, अवैध प्रवास, पर्यावरणीय नुकसान और सीमा पार की मुश्किलों पर ही जाता है। जबकि प्राचीन रीति-रिवाज, तौर-तरीके, मान्यताओं, परिधान और पर्यावरण के साथ-साथ औपचारिक शिक्षा की स्वीकार्यता और विकास के दूसरे फायदों की तरफ हमारा ध्यान बिल्कुल नहीं जाता है। परंपरा और आधुनिकता के बीच साम्य स्थापित करने के प्रति लोगों की मेहनत जीवन के प्रति पूर्वोतर के लोगों की जिंदादिली को दर्शाता है। हम पूर्वोत्तर में व्याप्त समस्याओं को नजरअंदाज करने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। उस क्षेत्र की व्यापक समझ के लिए हमें वहां के लोगों की जिंदगी जीने की रणनीति को समझना होगा, तभी हम पूर्वोत्तर की तह तक पहुंच पाएंगे। इसकी शुरुआत बांस से करनी होगी जो हमारे यहां जंगलों में बहुतायत में उपलब्ध है और प्राय: विभिन्न तरह के कार्यों के लिए उपयोग में लाया जाता है। बांस गांवों में लकड़ी और लोहे के विकल्प को बखूबी पूरा करता है। आज मनुष्य लकड़ी को अपनी आवश्यकता एवं उपभोग की पहली पसंद बनाकर जंगलों एवं वृक्षों की अंधाधुंध कटाई कर रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में अगर हम देखें तो लकड़ी के विकल्प के रूप में बांस पर्यावरण संतुलन में अपनी महती भूमिका निभा सकता है। अभी तक लकड़ी के विकल्प के न होने का रोना रोया जा रहा था लेकिन वस्तुत: यह विकल्प की अनदेखी करना है। आज हमारे पास बांस की बहुलता है। आवश्यकता है लकड़ी के विकल्प के रूप में इसके उपयोग के संबंध में लोगों को जानकारी देने तथा दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ मानव को इसे अपनाने के लिए प्रेरित करने की। ❑